ब्रह्म पुराण

[प्रथम खण्ड]

(सरल हिन्दी भाष्य सहित जनोपयोगी संस्करण)

★

सम्पादक :

पं० श्रीराम जी शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन, २० स्मृतियों, १८ पुराणों, योग वासिष्ठ, आदि के प्रसिद्ध भाष्यकार और हिन्दी के लगभग १५० ग्रन्थों के रचयिता।

★

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली–२४३००३ (उ० प्र०)

ब्रह्मपुराण

(प्रथम खण्ड)

(मूल व सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)

卐

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद, षट् दर्शन, २० स्मृतियाँ, योगवाशिष्ठ,
१८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार और लगभग
१५० हिन्दी ग्रन्थों के रचियता

卐

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेदनगर), बरेली–२४३००३ (उ०प्र०)

फोन नं० ७४२४२

प्रकाशक :

डॉ० चमनलाल गौतम

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब (वेद नगर)

बरेली–२४३००३ (उ० प्र०)

फोन : ७४२४२

*

सम्पादक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

*

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

*

संशोधित जनोपयोगी संस्करण

सन् १९८६

*

मुद्रक :

शैलेन्द्र वी० माहेश्वरी

नव ज्योति प्रेस,

भीकचन्द मार्ग, मथुरा

* Rs 20 - -

मूल्य :

उन्नीस रुपये मात्र

भूमिका

यो विद्याच्चतुरो वेदान् साङ्गोपनिषदो द्विजः।
न चत्पुराण सम विद्यान्नैव स स्याद्विचक्षणः।

"ब्रह्म पुराण" का यह कथन पुराणों के प्रति प्राचीन काल के विद्वानों की भावना दिग्दर्शन कराता है। इस लेखक के मतानुसार यद्यपि 'वेद' भारतीय धर्म के मूलाधार हैं, पर केवल उन्हीं के पठन-पाठन से मनुष्य धर्म के सम्पूर्ण स्वरूप की जानकारी प्राप्त नहीं कर सकता। इसीलिये वह कहता है कि "मनुष्य चाहे चारों वेदों उपनिषदों सहित अध्ययन कर ले, पर यदि पुराणों की जानकारी नहीं है, तो उसे "विद्वान्" नहीं कहा जायगा। "हम जानते हैं कि हिन्दू-समाज के ही अनेक व्यक्ति और एकाध नवीन सम्प्रदाय वाले इस कथन से असन्तुष्ट होंगे कि पुराणों की तुलना वेदों से की जा रही है, पर हमारी सम्पति में जो कुछ ब्रह्माण्ड पुराणकार ने कहा है वह ठीक ही है यह सत्य है कि वेदों का महत्व बहुत अधिक है और अध्यात्म-विद्या की दृष्टि से उपनिषद् उनसे भी आगे बढ़े हुए हैं, पर यह समस्त एकांगी हैं। भारतीय मनीषियों ने धार्मिक ज्ञानके तीन विभाग किये हैं, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। वेद और उपनिषदों को आध्यात्मिक ज्ञान का स्रोत माना गया है, पर शेष दो विभागों का वर्णन विस्तार के साथ पुराणों में ही पाया जाता है।

जो व्यक्ति भारतवर्ष के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान का व्यापक परिचय और व्यावहारिक स्वरूप जानना चाहता है उसको पुराणों का अध्ययन करना अनिवार्य है। यद्यपि पुराणों में प्राचीन काल के महापुरुषों, राज-वंशों और प्रसिद्ध शासकों का वर्णन कथा के रूप में ही किया गया है तो भी उनसे विभिन्न कालों की नैतिक तथा सामाजिक स्थिति का कुछ आभास तो प्राप्त होता ही है। इस प्रकार के वर्णनों के आधार

पर ही हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि तत्कालीन व्यक्ति उन आध्यात्मिक तथा धार्मिक आदर्शों का वास्तव में कितनी हद तक पालन कर पाते थे। इस समस्या पर विचार विमर्श करते हुए एक विद्वान ने कहा है—

भारतीय गवेषणा के स्रोत पुराण ग्रन्थ हैं। वेदों में सब प्रकार की गवेषणाओं का सूक्ष्म रूप है। "ब्राह्मण" और आरण्यक ग्रन्थों में आधिदैविक और अधियज्ञ गवेषणा प्रधानतया दिखाई देती हैं। पुराणों में सब प्रकार की बौद्धिक, व्यावहारिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक गवेषणाओं को इतिहास और कथानकों के माध्यम से आकर्षण तथा बुद्धि गम्य साहित्य के रूप में श्री व्यास जी ने विस्तृत किया है। इसमें न केवल शास्त्राभिप्रेत आचार, व्यवहार, प्रायश्चित्तादि दैनिक क्रियाओं की गवेषणा मात्र है अपितु मनुष्य जीवनोपयोगी महती भावनाओं का विस्तृत विधान है। भारतीय ज्ञान-गाथा में वेदार्थ को प्राप्त करने में मनुष्यता रूपी निधि की प्राप्ति बताई गई है। "इतिहास पुराणाभ्यां वेद समुपवृंहयेत" के अनुसार महाभारतादि इतिहास तथा अष्टादश पुराणों को समझने से वेदार्थ की निधि प्राप्त हो सकती है।

"बिना पुराण ग्रन्थों के अध्ययन के तथा निरुक्तादि शास्त्रों के जानने के वेदार्थ का यथार्थ ज्ञान असम्भव है। तपस्वी कृष्णद्वैपायन वेदव्यास जी ने 'उत्तरमीमांसा ब्रह्मासूत्र' में वेद प्रतिपाद्य अध्यात्म-निष्ठा द्वारा त्रिविध सन्ताप से युक्त होने का सरल उपाय ज्ञान-निष्ठा की प्राप्ति बतलाया है और इस ज्ञान-निष्ठा का परिपाक पुराण पाठ द्वारा कहा है। इतिहास, पुराणों के कथानक ही प्रत्येक साधन को बुद्धि में सरलता पूर्वक ग्रहण करा सकते हैं। "यजुर्वेद" में कहा गया है—"ईशावास्यमिदसवे यत्किञ्चजगत्यां जगत। ते न त्यक्तेन भुञ्जीथा सा गृधः कस्य सिद्धनम्।" मनुष्यता के विकास का पूरा-पूरा साधन इस मन्त्र में आ गया है, पर केवल मन्त्र पाठ और उसके अर्थ को जान लेने से ही जीवन में उस भावना का अक्षुण्ण संचार होना कठिन है। अतः पुराणों में

वर्णित सत्यनिष्ठा, त्यागनिष्ठा, अद्रोह्-निष्ठा के "प्रतिपादक हरिश्चन्द्र" 'शंख" "च्यवन" आदि के कथानकों का मनन करते हुए जीवन में सत्य एवं करुणा का संचार तत्काल होने लगता है। अतः "सत्यंवद धर्मंचर" जैसे सूत्र रूप वेद वाक्यों का भावार्थ समझाने का प्रयास वेदव्यास जी ने पुराणों ग्रन्थों में किया है।"

इसमें सन्देह नहीं कि सामान्य जनसमुदाय में धार्मिक तत्वों की जानकारी तथा उनका प्रसार होने के लिये कथा-ग्रन्थों का पठन-पाठन आवश्यक और उपयोगी है। मध्यकाल में एक प्रकार से वेदों का लोप ही हो गया था और उनके जानने वाले उँगलियों पर गिनने लायक रह गये थे, फिर भी महाभारत, रामायण और विविध पुराणों की कथाओं और उनके आधार पर लिखे गये धार्मिक आख्यानों के पुस्तकों ने जनता की धर्मतिष्ठा को स्थिर रखा है। यद्यपि उस समय वेदों का दर्शन होना भी कठिन हो गया था, तथापि पुराणों में उनकी चर्चा सुनकर ही लोग उनके प्रति श्रद्धा बनाये रहे। पुराणों में सत्यनिष्ठा के सम्बन्ध में महाराज हरिश्चिन्द्र का उपाख्यान, पतिव्रत की निष्ठाके लिये सुकन्या और सावित्री का उपाख्यान, पितृभक्ति के लिये भीष्म पितामह का उपाख्यान पढ़ सुन कर लोग धर्म मार्ग की भावना को ग्रहण करते रहते थे। रामायण की कथा सुनकर लोग अनुभव करते थे कि किस प्रकार राम ने पिता के वचनों की रक्षा के लिये राज्य-त्याग कर दिया, अन्याय और दुराचार का अन्त करने के लिये रावण जैसे महाबली सम्राट् से संघर्ष किया जनमत का आदर करने के लिये अपनी परम प्रिय पत्नी का त्याग कर दिया। इन कथाओं का प्रभाव जन-जीवन पर बहुत अधिक पड़ता था और बहुसंख्यक लोग ऐसे महामानवों के चरित्र को आदर्श मानकर उनसे शिक्षा ग्रहण करते थे।

हम इससे भी इन्कार नहीं करते कि वर्तमान समय मे पुराणों का जो स्वरूप दिखाई पड़ता है वह "मूल रूप" से बहुत बढ़ा हुआ और भिन्न भी है। पुराणों में जगह-जगह यह कथन आता है कि आरम्भ

में 'वेद' एक था और "पुराण" भी एक ही था। साथ ही यह भी कहा गया है—

पुराण सर्व शास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरञ्च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥
(मत्स्यपुराण ५३-)

"अर्थात्" सर्व प्रथम ब्रह्माजी ने पराण-कथन किया और तदन्तर उनके मुखों से वेद बहिर्गत हुए।"

इस तथ्य को सभी विद्वान स्वीकार करते हैं कि पौराणिक कथानकों में उपमा, अलंकार और दृष्टान्त आदि का बहुत अधिक प्रयोग किया गया है, जिससे सामान्य बुद्धि के श्रोता उन्हें रुचि पूर्वक सुन सकें और धर्म के सूक्ष्म तत्वों का सार उन कथाओं में से ग्रहण कर सकें। इसलिये उपर्युक्त श्लोक में वर्णित "पुराण" और 'वेद" कौन से थे जो "चतुर्मुख ब्रह्मा" द्वारा प्रकट किये गये इस वाद-विवाद को उठाना हम तनिक भी आवश्यक नहीं समझते। इस तरह के पचड़े में पड़ना तो हम उन्हीं "खंडन-मंडन प्रिय' सज्जनों के लिये छोड़ देते हैं जिन्हें "आम खाने से नहीं वरन् पेड़ गिनने" से ही प्रयोजन होता है। हम तो इसका आशय इतना ही मानते हैं कि वेद और पुराणों का आदि स्रोत एक ही है। वहीं से प्रकट एक धारा ने 'सिद्धान्त" का रूप ग्रहण किया और दूसरी ने "कथा" का। ये दोनों ही आवश्यक है। बिना सिद्धान्त के "कथा" का कोई महत्व नहीं और बिना कथा के "सिद्धान्त" का हृदयङ्गम होना सम्भव नहीं। वर्तमान समय में भी विद्यालयों में पढ़ने वाले प्रत्येक विद्यार्थीको प्रत्येक सिद्धान्त अनेक "उदाहरण" (एक्जाम्पिल) देकर ही बताया और समझाया जाता है।

हम 'पुराणों' को ऐसे ही ग्रन्थों के रूप में ग्रहण करते हैं जिनमें भारतीय धर्म के सभी सिद्धान्त अनेक प्रकार के "उदाहरण' देकर समझाये गये हैं। इनमें "सत्य' "अर्द्ध सत्य' और "काल्पनिक' सभी तरह के उदाहरण हो सकते है। पर जिस प्रकार "बीज गणित' में

एक संख्या की कल्पना के द्वारा ही बड़े से बड़े जटिल प्रश्नों का सही उत्तर जान लिया जाता है, वही बात अधिकांश में "पुराणों" की है। यद्यपि उनमें मनोरंजक कथाएँ भरी पड़ी हैं, पर उनका उद्देश्य श्रोताओं को धार्मिक नियमों पर सुदृढ़ रखना ही है। हम यह भी समझते हैं कि मूल लेखकों ने "पुराण" को जिस रूप में रचा था उसमें आगे उत्पन्न होने वाला "कथा-व्यास" नये नये उदाहरण और भी जोड़ते चले गये। इतना ही नहीं नवीन लेखकों ने अठारह पुराणों के छत्तीस, फिर चौअन और अन्त में बहत्तर तक बना दिये। और तो क्या गुजरात में निवास करने वाले एक "पहलवान-वंश" का वर्णन करने के लिये "मल्ल-पुराण" भी तैयार कर दिया गया।

पर इसका आशय इतना ही है कि उनके लेखकों ने पुराण शब्द को 'कथा वाचक' मान कर अपनी रचनाओं का वैसा नामकरण कर दिया है। फिर उन्होंने बड़े पुराणों की यह 'शैली भी ग्रहण कर ली कि प्रत्येक रचना पर अलग-अलग लेखकों का नाम न देकर सबको 'मूल लेखक' व्यासजी के ही नाम से ही प्रचलित कर दिया। अब छापे-खानों की वृद्धि होकर पुस्तकों की बाढ़ आ जाने से हमको सबसे पहले प्रत्येक पुस्तक के लेखक और प्रकाशक की खोज करने की आवश्यकता पड़ती है. पर पहले जमाने में जब छापेखानों की 'औटोमेटिक मशीनें तो दूर लिखने का कागज भी एक दुर्लभ वस्तु माना जाता था पुस्तकें लिखकर नाम और धन कमाने का विचार किसी के ध्यान में नहीं आता था। विशेषतः धार्मिक लेखक तो अपनी रचनायें परोपकार और पुण्य की भावना से ही प्रस्तुत करते थे। इस प्रकार की प्रथा आरम्भ हो जाने से कुछ दोष और भ्रम भी उत्पन्न हो गये पर तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए उनको क्षम्य माना जा सकता है। जब पचास वर्ष पहले हमारे सामने अँग्रेज शासकों के पर्याप्त प्रयत्न करने और लाखों सार्वजनिक स्कूल खोल दिये जाने पर भी 'साक्षर' व्यक्तियों की संख्या सौ में से सात ही थी तो पुराने समय में जब कि कागज का

उपयोग अधिकांश के राजा और अमीर लोग ही करते थे. पढ़ने-लिखने वाले व्यक्तियों की संख्या दो-चार सौ में केवल एक हो तो भी कुछ आश्चर्य नहीं. ऐसे समय में जिन सज्जनों ने धार्मिक विचारों को लिखने और फैलाने में जो परिश्रम किया उसे गनीमत ही समझना चाहिये।

इतने विवेचन से पाठक यह अनुमान करने मे समर्थ हो सकते हैं कि भारतीय धार्मिक-साहित्य में पुराणों का क्या स्थान है ? उन्हें न तो धर्म का "मूलाधार" अथवा "अन्तिम निर्णायक" माना जा सकता है और न सर्वथा "अनुपयोगी" या त्याज्य कहना उचित है। यह दोनों ही प्रकार की सम्मतियां "अतिवादी" अथवा "कट्टर" श्रेणी के सज्जनों की ही हो सकती हैं हम पुराणों की त्रुटियों को जाते हुए भी उनके महत्व से इनकार नहीं करते। गुण-दोष किसमें नहीं होते। केवल "गुणों" का दावा करने वाले "कल्पना राज्य में भले ही विचरण करते हों. प्रत्यक्ष-संसार में तो उनका अस्तित्व ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता। इसी दृष्टि से समन्वयवादी प्रवृत्ति के सत्पुरुष पुराणों को भी उपयोगी मान लेते हैं।

हमने इसी दृष्टिकोण से अपनी यह 'पुराण-सीरीज' तैयार की है। कितनी ही बातें ऐसी हैं जो "पुराणों के पञ्च लक्षणों" की पूर्ति के लिये तब पुराणों में एक प्रकार से ही वर्णन कर दी गई हैं। कुछ बातें साम्प्रदायिक महत्ता सिद्ध करने के लिये किसी विशेष पुराण में बहुत अधिक मात्रा में वर्णन की गई हैं। कुछ बातें लेखक की रुचि या जानकारी का परिचय देने के ख्याल से विस्तारपूर्वक शामिल की गई हैं। कुछ उपाख्यान विशेष प्रभावशाली और लोकप्रिय समझ कर एक दूसरे से उद्धृत कर लिये गये हैं। इन कारणों से अधिकांश पुराणों का कलेवर बहुत बढ़ गया है। इसका परिणाम यह हुआ कि औसत दर्जे के पाठकों द्वारा पुराणों का पठन-पाठन प्रायः समाप्त ही हो गया। यदि किसी ने साहस करके पुराणों कों प्रकाशित भी किया तो वे बीसियों वर्ष तक ज्योंके त्यों धरे रह गये और धीरे-धीरे साहित्य-क्षेत्र से लोप होने लग गये। आज

स्थिति ऐसी आ गई है कि कितने ही मूल पुराणों का प्राप्त कर सकना भी बड़ा कठिन हो गया है। उदाहरण के लिए अठारह पुराणों की 'नामावली' में इस "ब्रह्म पुराण' का नम्बर सबसे पहला है, पर कहीं भी प्राप्त न हो सकने के कारण इसका प्रकाशन सम्भव न हो सका। अब सब पुराणों के छप चुकने पर अन्त में यह प्राप्त हो सका है।

इस स्थिति को देखकर ही हमने पुराणों के 'जनोपयोगी' (पोपुलर) संस्करण निकालते का निश्चय किया। इनमें से सब पुराणों में बार-बार आने वाले वर्णनों, साम्प्रदायिक दृष्टि कोण में बहुत बढ़ा चढ़ाकर किये गये वर्णनों, एक दूसरे से उद्धृत किये हुए उपाख्यानों, लेखकों की विशेष रुचि के आधार पर बहुत विस्तार से वर्णन की गई कला, विद्या सम्बन्धी बातों और किसी विशेष स्वार्थपूर्ति या अभिसन्धि की दृष्टि से शामिल किये गये अनुचित और हानि कारक वर्णनों को पृथक् करके हमने प्रत्येक पुराण के उपयोगी अंशों को संकलित किया है। इनमें पाठकों को प्रामाणिक मूल पाठ के सहित उसका निष्पक्ष भाव से किया गया भावार्थ मिल जाता है। इससे उनकी ज्ञान वृद्धि होकर पुराणों की समस्त उपयोगी सामग्री की जानकारी हो जाती है। इससे सामान्य जनता में पुराणों के प्रति आकर्षण पर्याप्त मात्रा में बढ़ा हैं और वे उनको रुचि पूर्वक पढ़ने लगे है। प्राचीन भारतीय साहित्य के प्रेमियों की दृष्टि में हमारी यह सेवा महत्वपूर्ण प्रतीत हुई जिसका अनुमान हमारे पास ऐसे प्रेमियों के आये हुए पत्रों से किया जा सकता है।

ब्रह्म-पुराण की महत्ता–

विभिन्न पुराणों के अन्तर्गत और अन्य प्राचीन ग्रन्थों में भी पुराणों की जो सूचियां दी गई हैं, उनमें थोड़ा बहुत भेद देखने में आता है, किन्तु सभी लेखकों ने प्रथम स्थान "ब्रह्मपुराण" को ही दिया है। इसका कारण यह हो सकता है कि यह समस्त विश्व 'ब्रह्म' से ही उद्भूत है, इसलिए सर्व प्रथम उसी का कीर्तन किया जाना उचित है। पर इसमें निराकार ब्रह्म चर्चा कहीं नहीं पाई जाती आरम्भ से अन्त तक "ब्रह्म" के साकार

रूपों की ही चर्चा है। सबसे पहले सूर्योपासना का विषय आया है और वास्तव में इस जगत् के प्रत्यक्ष कर्त्ता-धर्त्ता "सूर्य नारायण" ही है। पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ पुरी) की चर्चा बड़े विस्तार से की गई है और पुराण का मुख्य प्रतिपाद्य विषय कहा जा सकता है। अन्य भी बहुत से तीर्थों का वर्णन है, पर वह प्रायः पाँच सात पृष्ठों में ही पूरा होता चला गया है। शिव-पार्वती का विवाह और कृष्ण-चरित्र पर्याप्त विस्तार से वर्णित है। कंस के अत्याचारों से लेकर द्वारिका गमन तथा बाणासुर वध तक की समस्त कथायें जो भागवत आदि में वर्णित हैं "ब्रह्मपुराण" में भी पूर्ण रीति से दी गई है। वाराह, नृसिंह, वामन आदि अन्य अवतारों के चरित्र में उसमें स्थान-स्थान पर अच्छे रूप में दिये गये हैं। इन समस्त कथाओं के सुपरिचित होने तथा अन्य पुराणों में अधिक विस्तार से वर्णित होने के कारण हमने उनको संक्षिप्त रूप में ही दिया है।

सूर्य माहात्म्य और सूर्यपूजा–

"ब्रह्म-पुराण" की विषय सूची पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि सूर्य भगवान् का माहात्म्य, उनकी पूजा-उपासना की विधि और उनके द्वारा महान् पुण्य-फल की प्राप्ति का वर्णन इसकी एक उल्लेखनीय विशेषता है। "सूर्यदेव का प्रमुख मन्दिर "उड़ीसा प्रांत के "कोणादित्य" (अथवा "कोणार्क") नामक स्थान में अवस्थित है. उसका परिचय भी इस पुराण में बड़ी भक्ति प्रवणता से दिया गया है। अन्य पुराणों में जैसी विस्तृत और सांगोपाँग उपासना-विधि बिष्णु और शिव की दी गई है वैसी इस पुराण के आरम्भ में "सूर्य भगवान्" की सन्निवंशित है। "कोणार्क" के प्रसिद्ध मन्दिर का परिचय देते हुए पुराणकार ने लिखा है।

"भारतवर्ष में दक्षिण-सागर में संस्थित "औड्र देश' (उड़ीसा) है जो स्वर्ग और मोक्ष दोनों के प्रदान करने वाला है। वह सब गुणों से अलंकृत और पुण्यशीलों का देश हैं। उस देश में उत्पन्न ब्राह्मण तपस्या

और स्वाध्याय में निरत रहने वाले हैं और सदा ही वन्दना करने योग्य तथा पूज्य हैं। उसी प्रदेश में "कोणादित्य" नाम से प्रसिद्ध भगवान् सूर्य देव का मन्दिर अवस्थित है जिसमें भुवन-भास्कर का दर्शन करके मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पा जाता है। भगवान रविदेव का यह पुण्य-क्षेत्र डेढ़ योजन विस्तार वाला है जो भोग और मोक्ष दोनों का प्रदानकर्त्ता है। वहां पर सहस्रांश-देव स्वयं विराजमान रहते हैं. जिनका शुभ नाम 'कोणादित्य" प्रसिद्ध है। माघ शुक्ल सप्तमी के दिन सूर्य-भगवान की उपासना का विशेष पर्व होता है। उस दिन 'कोणादित्य" की यात्रा करके मकरालय में स्नान करे और विशुद्ध आत्मा वाला होकर दिवाकर देव का स्मरण करे। रात्रि के अन्त में समाहित होकर सागर में विधिपूर्वक स्नान करके देव, ऋषि तथा मनुष्यों का भली भाँति तर्पण करना चाहिए।

"इसके पश्चात् नवीन धुले हुए वस्त्र धारण करके आचमन करे और भक्ति पूर्वक समुद्र तट पर उपनिष्ट हो जाय। उस सूर्योदय काल में पूर्व दिशा की ओर मुख करके स्थित होना चाहिए और रक्त चन्दन को घिसकर उससे एक अष्ट-दल पद्म चित्रित करना चाहिये। तत्पश्चात् एक ताम्र पात्र अथवा अर्क-पत्रों से बने दौने में तिल. अक्षत रक्त चन्दन से युक्त जल रक्त पुष्प ओर दर्भ रख कर सूर्य भगवान की पूजा करे। उदय आदि अङ्गों से करन्यास तथा अङ्ग न्यास करके परम श्रद्धा के साथ भगवान भास्कर का ध्यान करे फिर उस रक्त चन्दन से निर्मित अष्टदल पद्म में अन्तरिक्ष में स्थिति सूर्यदेव का आवाहन करके विधि पूर्वक पूजा करे। पूजा समाप्त हो जाने पर फिर ध्यान मग्न होकर भास्कर देव का ध्यान करे कि पिंगल बर्ण के नेत्र वाले. दो भुजाओं से युक्त. रक्त वर्ण वाले. पद्म दल के समान अरुण अम्बर से युक्त रवि देव सब सुलक्षणों से समन्वित है और समस्त आभरणों से सुशोभित हैं। वे सुन्दर रूप वाले. वरदान प्रदान करने वाले. परम शान्त रूप से स्थिति और प्रभा-मण्डल से मण्डित हैं। सिन्दूर के समान सघन वर्ण के

उदय कालीन सूर्य-देव का दर्शन करे। फिर उस पूजा पात्र को मस्तक पर रख कर जानुओं से पृथ्वी पर स्थित होकर चित्त को एकाग्र करे और मौन रह कर भगवान सूर्यदेव को अर्घ्य दे। भगवान सूर्य भक्तिभाव से युक्त मनुष्य का ही अर्घ्य ग्रहण करते है. वह दीक्षित हैं या अदीक्षित इसका ध्यान नहीं रखते।"

लेखक ने उपरोक्त वर्णन में कोई नई बात नहीं कहीं है। जो पूजा विधान धन्य प्रमुख देवताओं का है वही सूर्य का भी बतला दिया है। केवल ध्यान करने में सूर्य की विशेषताओं के अनुसार उनके स्वरूप और वर्ण का वर्णन थोड़ा पृथक् है। इस पूजा और उपासना का फल भी ज्यों का त्यों कहाँ गया है। यथा--

"भगवान आदित्यदेव को अर्घ्य देने से रोग युक्त मनुष्य रोग से विमुक्त हों जाता है धन के अभिलाषी को धन की प्राप्ति होती है, विद्यार्थी विद्या के प्राप्त करने में सफल होता है और पुत्र की अभिलाषा रखने वाला पुत्रवान बन जाता है। जिस-जिस कामना को रख कर सूर्य भगवान को अर्घ्य दिया जाता है। सुधी पुरुष उसी-उसी कामना के अनुसार फल प्राप्त करते हैं। इसके पश्चात् सूर्यदेव के मन्दिर में जाकर पुष्प द्वारा देवार्चन करके मौन रहते हुए तीन बार प्रदक्षिणा करना चाहिये। फिर दण्डवत प्रणाम करके "जय" शब्दों की ध्वनि के साथ स्तवन करे। इस प्रकार सहस्रांशु देव का, जो इस जगत के पति हैं, पूजन करने से मनुष्य को दश अश्वमेधों का फल प्राप्त होता है।"

सूर्य की सर्वोपरि महिमा—

'आदित्य-माहात्म्य' की इति श्री यहीं नहीं हो गई। जिज्ञासुओं से फिर प्रश्न किया कि 'गृहस्थ. ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और सन्यासी—इनमें से जो मोक्ष चाहता है, वह किस देव की उपासना करे, इस विश्व-ब्रह्माण्ड में देवों का भी देव कौन हैं ? और पितृगणों का भी पिता कौन होता है ? हम सबसे बड़े देव को जानने के अभिलाषी है।"

इस प्रश्न का समाधान करते हुए ब्रह्मा बाबा ने कहा—"हे द्विजोत्तमो ! ये भगवान् भास्कर ही समस्त जगत को अन्धकार से रहित कर दिया करते है । इनसे बड़ा कोई देव नहीं है । अर्थात् यह सूर्य ही परात्पर देव हैं । यह देव आदि अन्त से रहित हैं और यह शाश्वत और अव्यय पुरुष है । अपनी किरणों से अत्यन्त तेजोमय रूप धारण करके यह तीनों लोकों की तपस्या करते हैं । सर्व देवमय और तपन करने वालों में सर्वश्रेष्ठ हैं । ये ही इस सम्पूर्ण जगत के नाथ और सर्व साक्षी हैं । ये सब भूतों को लय और पुन: सृजन करते रहते हैं । ये ही प्रकाश देते हैं, अपना उष्णता द्वारा शीत से रक्षा करते हैं और अपनी किरणों द्वारा वर्षा किया करते हैं । यही धाता हैं । यही विधाता हैं, यही समस्त भूतों के आदि हैं और समस्त भूतों पर कृपाकरके उनका पालन करने वाले हैं, इनका कभी क्षय नहीं होता, इनका मण्डल चिरस्थायी ही बना रहता है । यही पितृगणों के पिता तथा देवों के भी देव हैं । जब सृष्टि का अवसर होता है तो सम्पूर्ण जगत आदित्य से भी प्रसूत होता है और जब प्रलय होती है तो समस्त विश्व उन्हीं में लीन हो जाता है । ब्रह्मा, विष्णु शिव आदि देवगण तो शब्द से ही कहे जाते हैं, वास्तव में तो सूर्य ही परम देव हैं जिनकी एक मात्र भक्ति की जानी चाहिए ।"

सूर्य के स्वरूप का जो यह विवेचन धार्मिक भावना से और वैसी ही भाषा में किया गया है पूर्णत: सत्य और प्रमाण सिद्ध है । आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी इस सम्बन्ध में यही कहा है । उनके मतानुसार हमारी पृथ्वी और इसके समीप के बुध, मंगल, शुक्र, वृहस्पति, शनि आदि समस्त ग्रह और चन्द्रमा आदि उपग्रह सूर्य के ही भाग हैं जो एक-एक करके सूर्य में से निकले हैं और अन्त में एक समय ऐसा आयेगा जब ये पुन: उसी ने लीन हो जायेंगे । ये दोनों अवस्थायें सृष्टि और प्रलय की ही मानी गई हैं । इस प्रकार वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि संसार के समस्त पदार्थ और प्राणी सूर्य के प्रभाव से भिन्न-भिन्न स्वरूपों और

रंगों के दिखाई पड़ते हैं। जब सूर्य की शक्ति उनमें से निकल जाती है, उनके देह प्राकृतिक अथवा कृत्रिम ताप से दग्ध हो जाते हैं तो सब कोयले या उसके भी पश्चात भस्म के रूप परिणित हो जाते हैं जो कि समस्त भौतिक पदार्थों का मूल रूप है। इस प्रकार नेत्रों से दिखाई पड़ने वाला यह प्रत्यक्ष जगत असंदिग्ध रूप से सूर्य से हीं प्रादुर्भूत होता है और उसी में लीन हो जाता है, ऐसी परिस्थिति में सूर्य का सबका "आदि कारण" या "आदि देव" कहा जाय तो कोई गलती नहीं है।

उत्कल प्रदेश की महिमा—

यद्यपि वर्तमान समय में उत्कल (उड़ीसा) का प्रदेश अनेक दृष्टि से पिछड़ा हुआ माना जाता है और उससे लगे हुए बंगाल प्रांत में अधिकांश उड़िया लोगों को 'कुली' या मजदूर ही कहा जाता है. पर यह स्थिति सदैव से नहीं चली आई है। अब से दो-ढाई हजार वर्ष पहले यह भूभाग "कलिंग" के नाम से प्रसिद्ध था और भारतवर्ष का एक महत्वपूर्ण भू-भाग माना जाता था। मगध के जगत प्रसिद्ध सम्राट अशोक ने कलिंग को जीतने के लिये अत्यन्त घोर संग्राम किया था। वहाँ का शासक महाराज खारवेल (जिसकों नये इतिहासकारों ने जैन धर्मावलम्बी कहा है) उस युद्ध में अत्यन्त वीरता से लड़ा था। इतिहास से विदित होता है कि इस अवसर पर इतनी अधिक संख्या में सेना विनाश हुआ कि उसे देखकर अशोक का हार्दिक भाव बदल गया। यद्यपि उसने एक लाख से भी अधिक सैनिकों का वध हो जाने पर कलिंग को विजय कर लिया पर उसके पश्चात् उसने युद्ध न करने की प्रतिज्ञा कर ली और बौद्ध धर्म का अनुयायी होकर आजन्म अहिंसा और जीव दया का प्रचार करता रहा। पर उस युद्ध के फल से उत्कल की शक्ति और वैभव कई शताब्दियों के लिये नष्ट हो गया और वह हीनावस्था में पहुँच गया।

हम नहीं कह सकते कि "ब्रह्म पुराण" के लेखक ने किस जमाने के "उड़ीसा-प्रदेश" का वर्णन किया है. पर इस ग्रन्थ में "कोणार्क" के

मन्दिर के साथ ही वहाँ के अन्य समस्त तीर्थों और विशेष रूप से पुरुषोत्तम क्षेत्र का बड़े ही विस्तार से वर्णन किया है। जिस प्रकार शैव-पुराणों में किया गया है कि वाराणसी क्षेत्र से बढ़ कर संसार में कोई पुण्य स्थान" नहीं हैं और वैष्णव पुराणों में जिस प्रकार वृन्दावन की महिमा सर्वोपरि बतलाई है, उसी प्रकार लक्ष्मी जी के प्रश्न करने पर भगवान विष्णु ने कहा है।

सुखपास्यः सुसाध्यश्चाभिरामश्च सुसत्फला।
आस्ते तीर्थवरे देवि विख्यात पुरुषोत्तमः॥
न तेन सदृशः कश्चित् त्रिषु लोकेषु विद्यते।
कीर्तनाद्यस्य देवेशि मुच्यते सर्व पातकैः॥

इस प्रकार पुराण कार ने इस क्षेत्र को सब प्रकार से सुख देने वाला, सुविधापूर्ण, सुन्दर और उत्तम फलों से युक्त कहा है। वहाँ पर स्थित पुरुषोत्तम क्षेत्र के समान स्थल तीनों लोकों में अन्य कोई नहीं है। उसका कीर्तन करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। "जगन्नाथ जी" की महिमा राजस्थान और उत्तर प्रदेश के एक बड़े भाग में अब भी बहुत अधिक मानी जाती है और प्रतिवर्ष लाखो व्यक्ति यहाँ से उसकी यात्रा करने जाते हैं। पर हमने यात्रियों को "सुन्दरता" अथवा "फल फूलों' की प्रशंसा करते नहीं सुना, वरन् वे एक भजन गाते हुए यही कहा करते हैं—"झारखण्ड में आय विराजे वृन्दावन के स्वामी।" कुछ भी हो सूर्योपासना और महाराज इन्द्रद्युम्न, द्वारा पुरुषोत्तम क्षेत्र की स्थापना का सविस्तार वर्णन ब्रह्मपुराण की विशेषता अवश्य है जो अन्य पुराणों में (स्कन्द महापुराण को छोड़कर) देखने में नहीं आती।

शिव पार्वती विवाह—

"ब्रह्म पुराण" अनेक कथायें अन्य पुराणों से भिन्न प्रकार से लिखी गई हैं। शिव पार्वती के विवाह के सम्बन्ध में कहा गया है कि पहले शिवजी विकृत रूप बनाकर स्वयं पार्वती जी के पास गये और उनसे

विवाह का प्रस्ताव किया। पार्वती के यह कहने पर कि इसकी स्वीकृति तो मेरे पिता ही दे सकते हैं। शिवजी उनके पिता हिमाचल के पास गये और विवाह का निश्चय हो गया। विवाह के अवसर पर जब सब देवगण हिमाचल के घर आवे तो उन्होने देखा कि छोटा शिशु जिसके पाँच शिखायें है पार्वती की गोद में सो रहा है। इस पर क्रोधित होकर इन्द्र ने उसे मारने को अपना वज्र उठाया पर उसका हाथ जहां का तहाँ स्तम्भित हो गया जब ब्रह्माजी ने बहुत स्तुति की तब शंकर जी अपने रूप में प्रकट हुए। इन्द्र का हाथ ठीक हुआ और विवाह विधि भी सम्पन्न की गई। इसी प्रकार मदन-दहन की प्रसिद्ध कथा भी विवाह के पश्चात् वर्णन की गई है। कहा गया है कि विवाह हो जाने पर जब वे गृह के भीतर विराज मान हुए तो उनको एकाएक कामवृत्ति का उत्पादन करने वाले मदन महीपति पर बड़ा क्रोध आया कि यह सब ऋषि-मुनियों की तपस्या में विघ्ने डाला करता है। और बहुतों को तो भ्रष्ट कर देता है। इस विचार के आने पर उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोला और उसे भस्म कर दिया। फिर मदन की पत्नी रति के प्रार्थना करने पर उसे अशरीरी रहकर ही संसार भर पर प्रभाव डाल सकने का वर दिया।

समुद्र महिमा–

समुद्र-स्नान भी जगन्नाथ पुरी की एक विशेषता है। वहाँ का समुद्री तट बहुत सुन्दर और स्वास्थ्यप्रद जलवायु युक्त कहा जाता है। ब्रह्मपुराण में समुद्र-स्नान की बड़ी प्रशंसा की गई है और उसका माहात्म्य सब तीर्थों से अधिक बतलाया है। उसका कहना है कि पुष्कर, हरिद्वार, प्रयोग आदि तो केवल अपना अपना माहात्म्य ही बतलाते हैं, पर समुद्र में तो सभी पुण्य सरिताओं तथा सरोवरों का समावेश हो जाता है। सब का जल अन्त में समुद्र में जाकर ही मिल जाता है। इसलिए समुद्र ही वास्तव में 'तीर्थराज' है और उसी का महत्व सर्वाधिक मानना चाहिये।

तावद् गर्जन्ति तीर्थानि महात्म्यैः स्वै पृथक्-पृथक् ।
यावन्न तीर्थ राजस्य महात्म्यं वर्ण्यते द्विजाः ॥

सागर-स्नान की विधि में "नारायण" का जो वर्णन किया गया हैं, वह भी सागर की महत्ता को प्रतिपादित करने वाला है। उसमें कहा है—

"सागर के समीप जाकर सर्वप्रथम आचमन करे और सब प्रकार से पवित्र होकर परम पुरुष नारायण का ध्यान करे। तत्पश्चात् शरीर और हाथों में अष्टाक्षर मन्त्र का न्यास करना चाहिये। उसका मंत्रहै— "ॐ नमो नारायण"। इस मंत्र की ही समस्त मनीषीराण प्रशंसा किया करते हैं। जब यह मन्त्र प्राप्त हो गया तब अन्य बहुत से मन की विभ्रम मैं डालने वाले तन्त्रों की क्या आवश्यकता है। "ॐ नमो नारायण" यह मन्त्र सब मनोरथों की पूर्ति करने वाला है। 'नर' के पुत्र होने से ही जलका नाम 'नारा' प्रसिद्ध हुआ है। वही "नारा" नामक जल भगवान् का "अपने" (निवास-स्थल) होने से इनका नाम "नारायण" कहा गया। समस्त पुराण भगवान नारायण का ही पारायण और प्रतिपादन करने वाले हैं। सब द्विजगण भी नारायण के स्मरण मेंही तत्पर रहते हैं। सब यज्ञ भी नारायण की प्राप्ति के लिये किये जाते हैं। समस्त शास्त्रोक्त धर्म क्रियायें भी नारायण के उद्देश्य से ही की जाती है। यह समस्त पृथ्वी भी नारायण में पारायण होती है। इस विश्व के समस्त पदार्थ नारायण के ही विभिन्न स्वरूप होते हैं उनके अतिरिक्तवहाँ कुछ भी नहीं है। जल में, स्थल में पाताल में, स्वर्गलोक में, अम्बर में पर्वत में भगवान नारायण ही स्थित हैं। आप अर्थात् जल ही भगवान विष्णु का आयतन (निवास स्थल) है इसलिये जलनिधि (समुद्र) में स्नान करते समय नारायण का स्मरण करना अनिवार्य हैं।"

पुरुषोत्तम क्षेत्र के वर्णन में मत्स्य वाराह नरसिंह आदि समस्त अवतारों के स्थान भी वहाँ पर बतलाये हैं। सबके मन्दिर वहाँ पर बने हैं जिन्दगी की पूजा उपासना महान् फलों को देने वाली कही गई है। इन

मन्दिरों में नृसिंह अवतार मत्स्य-माधव श्वेत-माधव आदि के मन्दिर प्रसिद्ध हैं। वहाँ श्वेत गंगा और वट रूपी कल्पवृक्ष भी है।

गंगा के दो स्वरूप--

गंगावतरण के विषय में एक अद्भुत कथा यह दी है कि पार्वती विवाह हो जाने के पश्चात् भी भगवान् शिव गंगाजी को अपने जटाजूठ में छिपाये रहते थे और उससे बड़ी प्रीति रखते थे। यह बात उमादेवी को सहन नहीं होती थी। अतएव उन्होंने अपने पुत्र गणेश स्कन्द तथा पुत्री जयादेवी को एकान्त में बुलाकर कहा कि तुम्हारे पिता बड़े रसिक और कामुक हो गये हैं मैंने बहुत कुछ प्रयत्न किया पर वे किसी प्रकार गंगा को नहीं छोड़ते। इसलिये तुम सब मिलकर कोई ऐसा उपायकरो जिससे गंगाजी उनकी जटाओं से निकल कर भूलोक में बहने लग जायें अन्यथा मैं पुनः अपने पिता हिमालय के यहाँ जाकर तपस्या करने लगूँगी। इस पर बुद्धिमान गणेश जी ब्राह्मण का वेश धारण करके और अपनी बहिन जया को लेकर गौतम ऋृति के आश्रम में गये। वहाँ जया गौ का रूप धारण करके गौतम के चावल के खेत को खाने तथा नष्ट करने लगी। यह देखकर गौतम ने उसे हटाने का प्रयत्न किया तो वह मूछित सी होकर वही गिर पड़ी इस पर उस आश्रम में रहने वाले सभी मुनिगण, विशेषतया ब्राह्मण वेषधारी गणेश जी बहुत हायविज्यम करने लगे। जब गौतम जी ने उपाय पूछा तो उन्होंने कहा कि शिवजी की जटाओं में बहने वाली गंगा को यहाँ ले आओं, उनके जल से अभि, पिञ्न करने से यह गौ स्वस्थ हो जायेगी। गौतम जी ने यही किया और वे शिवजी को अपनी स्तुति और प्रार्थनाओं से प्रसन्न करके वर, स्वरूप गौतमी गंगा को माँग लाये। इसमें एक तरफ सांसारिक मनुष्यों को पुण्य प्राप्त कर सकने का सुअवसर प्राप्त हुआ और दूसरी तरफ पार्वती जी का उद्देश्य पूरा हो गया।

इस प्रकार की कथाएँ चाहे कुछ लोगों को पसन्द आती हों, परहम नहीं समझते कि संसारी लोगों की तरह देवता और देवियों में भी

"सौतिया डाह" की प्रवृति बतलाना कोई अच्छी बात है। फिर एक तरफ तो शिवजी को कामदेव को भस्म करने वाले योगीराज के रूप में चित्रित करना और दूसरी तरफ इतना "कामुक" बतलाना कि वे अपनी विवाहिता पत्नी के सामने ही एक अन्य नारी को सदैव समीप रखते हैं, एक असभ्यता की सी बात प्रतीत होती है। संभव है उत्कल प्रान्त में जिस समय बाम मार्गीय तन्त्र-शास्त्र का विशेष जोर था कि लेखक ने इस प्रकार के वर्णन इस पुराण में सम्मिलित कर दिये हों। जगन्नाथ पुरी के प्रसिद्ध मन्दिर के ऊपर जो स्त्री-पुरुष ने "काम-व्यवहार.. की अनेक मूर्तियाँ बनी हुई है, उनका मूलःस्त्रोत भी विद्वानों ने वहाँ पर प्रचलित बाम-मार्ग को ही बतलाया है। उन मूर्तियों के विरुद्ध कई बार आवाज भी उठाई गई थी, और सम्भवतः अब उनमें से कुछ को ढक दिया गया में।

गंगा के पन्द्रह रूप----

आगे चलकर गंगा के महत्व की वृद्धि करने के लिए एक विशेष वर्णन यह भी मिलता है कि जिस भागीरथी को हम एक मात्र गंगा मानते हैं केवल वही एकामात्र गंगा नहीं हैं वरन् जब गौतम ऋषि भूलोक के कल्याणर्थ उसे माँगकर लाये तो वह पन्द्रह स्थानों में बँट कई। इनमें से चार धारायें तो स्वर्ग लोक को गईं, सात मनुष्य लोक मेंआईं। नर्मदा, सरस्वती कृष्णा, भागीरथी, तुंगभद्रा और गोदावरी ये सब गंगा के ही रूप हैं। इनमें भी गौतमी गंगा या गोदावरी का माहात्म्य सर्वाधिक है। इसके विषय में पुराणकार नेलिखा है |

"यह गौतम गंगा सर्वदा ही समस्त मनुष्यों के लिये महान् तीर्थ है। यह इन दोसौ योजनाओं में बहेगी उनमें साढ़ेतीनकरोड़ तीर्थसमुत्पन्नहोंगे ब्राह्मी गंगा, गोदावरी नन्दा, सुनन्दा और काम दायिनी हैं यह ब्रह्मतेज द्वारा लाई गई है और सब प्रकार के पापों का शमन करने में समर्थ है यह शिव-प्रिया स्मरण मात्र से ही पापों के समुदाय को नष्ट कर देने

वाली है। पाँचों भूतों में जल ही परम श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ है। उसमें जो तीर्थभूत जल है वह सब से प्रमुख माना गया है सब तीर्थ जलों में भांगीरथी का जल श्रेष्ठ कहा गया है, और उससे भी गौतमी का जल परम श्रेष्ठ हैं। यह गौतम शिवजी की जटाओं सहित ही लाई गई हैं। इससे बढ़कर शुभ तथा समस्त मनोरथों का पूरा करने वाला तीर्थ स्वर्ग में तथा भूतल में कहीं नहीं है।

पौराणिक माहात्म्य वर्णन की यह विशेषता है कि जिसकी प्रशंसा की जाती है उसी को उस अवसर पर सर्वोपरि बना दिया जाता है। गंगा के वर्णन में स्थान-स्थान पर ऐसी ही प्रशंसा की गई है। एक अन्य पुराण में सर्व श्रेष्ठ तीर्थ सरिता और तीर्थ का स्थान नर्मदा को दिया गया है।

"ब्रह्मपुराण" का तीर्थ वर्णन--

"ब्रह्म पुराण" के तीर्थ वर्णन में भी कुछ विशेषता है। इसमें जिन कपोत तीर्थ, पैशाच तीर्थ, क्षुधा तीर्थ, चक्र तीर्थ, गणिका संगम, अहिल्या संगमेन्द्र तीर्थ, श्वेत तीर्थ, बृद्धा संगम तीर्थ, ऋण प्रमोचन तीर्थ. सरस्वती संगम तीर्थ, रेवती संगम तीर्थ, राम तीर्थ, पुत्र तीर्थ, यक्षिणी संगम तीर्थ, वाणी संगम तीर्थ कपिला संगम तीर्थ, खड्ग तीर्थ. आनन्द तीर्थ, निग्न भेद तीर्थ आदि का नामोल्लेख है वे किसी अन्य पुराण में नहीं मिलते। फिर दूसरी विशेषता यह भी है कि इन तीर्थों में से अधिकांश "गौतमी' से न सम्बन्ध रखते हैं- इन कथाओं से सम्बन्ध रखने वाले अधिकांश व्यक्तियों का उद्धार 'गौतम" द्वारा ही हुआ है। इन कथाओं मैं से कितनी में बिल्कुल नई बातों का पता लगता है।

"वृद्धा-संगम तीर्थ" में एक बड़ी विचित्र कथा कही गई है कि एक गौतम वंशीय ब्राह्मण. जो भाग्ययश विद्या. धन तथा सौन्दर्य सभी गुणों से वंचित रह गया था. भ्रमण करता हुआ एक दिन किसी पहाड़ की गुफा में जा पहुँचा। उसे वहाँ एक बहुत वृद्धा स्त्री दिखाई पड़ी

वृद्धा ने ब्राह्मण से आग्रह किया कि तुम मेरे गुरु बन जाओं। ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि मैं सब प्रकार से गुणहीन हूँ तुम्हारा गुरु कैसे बन सकता हूँ ? वृद्धा ने बतलाया कि मैं क्षत्रिय राजा और गन्धर्व कन्या से उत्पन्न हुई हूँ। मेंरी माता चलते समय मुझ से कह गई थी कि तेरी इस गुफा में जो पुरुष सबसे पहले प्रविष्ट हो वही तेरा पति होगा पर सैकडों वर्ष बीत जाने पर भी यहाँ कोई पुरुष नहीं आया। आज सबसे पहले पुरुष तुम्हीं इसमें प्रविष्ट हुये हो. इसलिये मैंने तुमसे इस प्रकार का प्रस्ताव किया। फिर वृद्धा ने अग्नि देव से प्रार्थना करके गौतम ब्राह्मण को विद्वान् और स्वरूपवान् भी करा दिया। तब वे दोनों उसी गुफा में पती-पत्नी के रूप में निवास करने लगे। किसी समय सप्त ऋषिगण उनकी गुफा के निकत होकर निकले और गौतम ब्राह्मण ने उनकी भली प्रकार अभ्यर्थना की। वे ऋषिगण उस युवक तथा वृद्धा की जोड़ी देख कर विस्मित हुये और इसका कारण पूछा। गौतम ने पूरा किस्सा सुनाया। अगस्त ऋषि ने उस पर दयार्द्र होकर गौतमी में स्नान करने की सम्मति दी गौतमी की कृपा से वृद्धा नव यौवना हो गई और फिर वे पति पत्नी बहुत काल तक सुख पूर्वक निवास करते रहे।

दूसरी कथा "सरमा नामक कुतिया की है जो स्वर्गलोक में देवताओं की गौओं को रखवाली करती थी। एक बार वहाँ कुछ दैत्य आये और सरमा को घूस (रिश्वत) के रूप में कुछ धन देकर गायों का हरण करके ले गये। जब इस घटना की जाँच पड़ताल की जाने लगी तो सरमा ने कहा कि दैत्यगण मुझे बाँधकर जबर्दस्ती गायों को लेकर चले गये। पर देवगुरु ! बृहस्पति ने ध्यान द्वारा सारी घटना को जान लिया और सरमा के दोष की बात इन्द्र को बतलादी। इन्द्र ने कुतिया को लात मारी और शाप दिया कि तू मनुष्य लोक में जाकर जन्म ले। सरमा पृथ्वी पर कुतिया के रूप में इधर-उधर फिरती हुई कष्ट सहन करने लगी। यह देखकर उसके दो पुत्रों ने यमराज के

प्रिय सेवक थे, अपनी माता की दुर्दशा के सम्बन्ध में यमरराज को सब कथा सुनाई। इस पर यमराज ने अपने पिता सूर्य से सम्माति ली और तदनुसार गौतभी-गंगा की आराधना करके सरमा को शाप से विमुक्त कराया।

यद्यपि ये दोनों कथायें गौतमी गंगा की महात्म्य बढ़ाने की दृष्टि से रची गई हैं, पर हर तरह के जोष करने वाले को थोड़ी बहुत क्षमा-प्रार्थना और खुशामद करने पर दण्ड से मुक्त कर देना कोई श्रेष्ठ आदर्श नही कहा जा सकता। प्रथम तो देव लोक के सुख साधनों में रह कर जहाँ कल्प वृक्ष से सब कामनाओं की पूर्ति होती बताई है, रिश्वत लेना और कर्तव्य विमुख हो जाना, एक बड़ा जघन्य अपराध है। ऐसे लालची व्यक्ति को अपने यहाँ से निकाल देना सर्वथा उचित ही था। दूसरी कथा एक वृद्धा का एक नवयुवक के साथ परिणय होना भी कोई अच्छा आदर्श नहीं कहा जा सकता। यदि कोई व्यक्ति विवशता या लालच के कारण ऐसा कार्य कर लेता है, तो भी वह लोक निन्दा का पत्रा ही बनता है।

अन्य बहुत सी कथायें उपदेश पूर्ण और प्रेरणादायक भी हैं। "खंख तीर्थ" की कथा में बतलाया गया है किस प्रकार मनुष्य को ज्ञान की आराधना करके क्रोध, तृष्णा आसक्ति- संशय आदि दोषों पर विजय प्राप्त करनी चाहिये। संसार में सब कोई धनी और वैभवशाली नहीं हो सकते, ऐसी अवस्था में तृष्णा मनुष्य को अत्यन्त दुःख देती है। पर ज्ञान की साधना करने वाला इस संसार की वास्ताविकता को समझ कर जैसी भी परस्थिति सामने आवे उसी में सन्तुष्ट रह सकता है। इसी प्रकार :"भाव तीर्थ" की कथा में जब शिवजी ने राजा को बरदान माँगने को कहा था तो उसने यही याचना की कि इस तीर्थ में जो व्यक्ति महान रोग, महान बिपत्ति से व्यथित होकर आये वे सफल मनोरथ होकर जायें "चक्षु तीर्थ की कथा में सज्जन और दुष्ट व्यक्ति का अन्तर बहुत शिक्षाप्रद ढंग से प्रकट किया गया है। धर्म पक्ष के

समर्थन करने वाला मणिकुण्डल वैश्य यद्यिपि अपने दुष्ट मित्र द्वारा बहुत सताया गया और ठगा गया, पर अन्त में उसके सबकष्ट दूरहो गये और वह एक बहुत प्रसिद्ध तथा वैभवशाली व्यक्ति बन गया।

जैसा हम कह चुके हैं कि "ब्रह्म पुराण" में वर्णित सभी तीर्थ एक प्रकार से नये ढंग के हैं और उनका मुख्य उद्देश्य गौतमी-गंगा महत्व का प्रतिपादन करता है। इस प्रकार की कथाओं में ऐतिहासिक तथ्य अथवा वास्तविक घटनाओं को ढूढ़ना अनावश्यक है। उन्हें धर्म कथा या कहानी मानना ठीक है और जितना सदुपयोग उनसे प्राप्य हो सके उतना करना चाहिए।

कलियुग वर्णन—

अन्य पुराणों की तरह इस पुराण में भी कलियुग का वर्णन काफी विस्तार से दिया है और वर्तमान दशा से उसका मिलान करके उसे हम बहुत कुछ ठीक भी कह सकते हैं। ऐसे वर्णनों में ज्योतिष शास्त्र द्वारा प्राप्त भविष्य-ज्ञान की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। वह समय के चिन्हों की समझ सकने वाली मानव-वृद्धि से हो जाना हो सकता है जिन बातों बीज का आज समाज और व्यक्तियों में मौजूद हैं वे आगे चलकर पौध और वृक्ष रूप में प्रत्यक्ष होंगे ही यह तथ्य स्वाभाविक और प्रकृति के अनुकूल ही हैं। किसी के आधार पर बुद्धिमान व्यक्ति कितने ही आगामी परिवर्तनों का अनुमान सही तौर परकर लेते हैं कलियुगी आचार विचारों की चर्चा करते हुये पुराणकार का कथन है—

"कलियुगी में वर्णाश्रम तथा आचार-विचार की प्रवृत्ति मनुष्यों में नहीं रहती। वह ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद के वैदिक आचरणों में भी श्रद्धा रखते। कलियुग में विवाह को राजधर्म क्रिया न मान कर उसका मुख्य उद्देश्य विलासिता ही समझा है। शिष्यगण गुरु की आज्ञा और अनुशासन में नही रहते। उस समय अग्निहोत्रादि

क्रियाओं को भी नियम से करना रुक जाता है। बंश की श्रेष्टता नष्ट होकर किसी भी कुल में उत्पन्नव्यक्ति जो शक्तिशाली होता है, वही सर्वोपरि बन जाता है। सभी वर्णों केव्यक्ति कन्योपजीवी बन जाते हैं। कलियुग के व्यक्ति चाहे जिस किसी प्रकार दीक्षा लेकर ही दीक्षित बन जाते हैं। प्रत्येक क्रिया को प्रायश्चित के योग्य मान लिया जाता है। कलियुग में जो कुछ कहीं भी लिखा या कहा होता हैं उसी को 'शास्त्र' मान लिया जाता है। कलियुग में सभी देवता हैं और चाहे जो व्यक्ति इच्छानुसार किसी भी आश्रम का अनुयायी बन जाता है।"

"कलियुग में लोग उपवास और पर्व आदि मनाते हैं तथा धन व्यय भी करते हैं, पर यह सब कार्य शास्त्र विधि के बजाय अपनी रुचि के अनुसार ही किये जाते हैं। बहुत थोड़े धन से लोगों को धन-मद होजाता है और स्त्रियाँ प्राय: रूपका मद करती देखी जाती हैं, चाहे केश-प्रशाधन के अतिरिक्त उनके पास कोई अन्य साधन हों। वे अपने पतियों को भी धन के आधार पर ही मान्यता देती हैं। इसी प्रकार जो अधिक धन दे सके वही दूसरों का स्वामी बन जाता है। इस समय मेंजो भी धन प्राप्त होगा वह भोगों में ही व्यय किया जायेगा और अन्याय से द्रव्यो पार्जन में किसी को तनिक भी संकोच न होगा। किसी निजी सम्बन्धी अथवा के प्रार्थना करने पर भी कोई अपनी स्वार्थ हानि करके सहायता को प्रस्तुत न होगा। सब मनुष्य सदैव अपनी स्वार्थ सिद्धि की द्रष्टि से उद्योग करेंगे। गौओं की मान्यतां भी अधिक दूध देने की द्रष्टि से होगी न कि धार्मिक विचार से। वर्षा काक्रम बिगड़ जाने से प्रजा सदैव अकाल से भयभीत रहा करेगी। लोग आलस्य और श्रम से बचने के कारण सदा ही अकाल का कष्ट भोगते रहेंगे। उस समय लोग विना स्नान किये ही भोजन करेंगे और अग्निहोत्र, अतिथि-पूजन, पिण्डादक आदि धर्मानुष्ठानों की तरफ किसी का ध्यान नहीं रहेगा।"

इसी प्रकार चारों वर्ण आश्रम तथा स्त्रियों का वर्णन करते हुये बताया गया है कि उस सयय सभी विषयों में लोग धर्म-शास्त्रों के

नियमों की परवाह न करके स्वेच्छा व्यवहार करने वाले बन जायेंगे। यद्यपि वर्तमान समय में हम उस प्रकार के व्यवहार को उन्नति का चिन्ह मानते हैं और उसे विचार स्वतन्त्र का नाम देते हैं पर समाज-कल्याण की दृष्टि से यह प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। हम यह नहीं कहते कि प्राचीन काल के सब नियम उपभोग अथवा सब कालों में लाभकारी है अग्निहोत्र पिण्डोदक और अतिथि पूजा के जो नियम शास्त्रों में वर्णन किये हैं वे समाज-संगठन और अर्थिक-व्यवस्था में अनावश्यक भी हो सकते हैं पर समाज में-अनुशासन और मर्यादा-पालन की प्रवृत्ति सदैव उचित और आवश्यक है समस्त समाज के हित-अनहित के कार्यों में मनमानी व्यवहार किसी काल में उचित नहीं कहा सकता। यही दोष वर्तमान समय में विशेष बढ़ गया है और इसी से सर्वत्र एक हलचल फैली हुई। इस समय मनुष्यों का मुख्य लक्ष्य अधिक से अधिक धन कमाना हो गया है चाहे उसके कारण अन्य व्यक्तयों अथवा समस्त समाज की कितनी भी हानि क्यों न होती हो। हम इसी स्वार्थ पूर्ण प्रवृत्ति को वास्तविक कलियुगी भावना कहते हैं ओर पुराणकार के वर्णन से भी यह ध्वनि निकलती है। इस कलियुगी भावना को दूर करना हमारा सर्व प्रथम कर्तव्य है।

योगाभ्यास की वास्तविकता—

योग, सांख्य, वेदान्त जैसे ज्ञानमार्गीय विषयों का संक्षिप्त वर्णन अनेक पुराणों में पाया जाता है और अधिकांश विद्वान् इन्हीं को मुक्ति का हेतु स्वीकार करते हैं। यद्यपि पुराणों का मुख्य उद्देश्य किसी न किसी देव भक्ति और उपासना का निरूपण और उसी के द्वारा सब कामनाओं की सिद्धि प्रतिपादन करता है, फिर भी पुराण-कारों ने 'ज्ञान मार्ग" के महत्व को स्वीकार किया है। "भगवद्गीता" से कृष्ण भगवान ने कहा कि जो व्यक्ति मेरा भक्त बनकर अपने सब कर्मोंको मुझे समर्पित कर देता है वह मुझे सब से अधिक प्रिय है। पर इसके साथ उन्होने यह भी बतलाया है कि इस संसार में ज्ञान से बढ़कर पवित्र अन्य कोई

तथ्य या शक्ति नहीं है।.. इस लिये "ब्रह्मपुराण" ने भी अति संक्षेप में योग का वर्णन किया है और हमें स्वीकार करना पड़ता है कि उसका विवेचना अन्य कितने ही पुराणों से उच्च कोटि का है। जहाँ अन्यलेखकों ने प्रायः आसन प्राणायाम धारणा, ध्यान, आदि अष्टांगों का पचड़ा ही सुनाया है "ब्रह्मपुराण" में योग का मूल मन की एकाग्रता बतलाया है; जैसा कि पातंजल योगदर्शन" का भी अभिमत है। उसने लिखा है—

"जिस योगभ्यासी का मन वशीभूत हो जाता है और वह उस मन को परमात्मा में भली प्रकार संलग्न कर लेता है और विषयों से बचे रहने का सदैव प्रयत्न करता रहता है, वही योग की सिद्धि प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। जिस समय चित्त विषयों से छूटकर पर-ब्रह्म में लीन हो जाता है उस समय समाधि बहुत सहज ही में लग जाती है। जब योगी का मन किसी कर्म में आसक्त नहीं रहता तभी वह आनन्द प्राप्ति करके निर्वाण-पद का अधिकारी बन जाता है। योग-बल से योगी योगी आध्यात्मिक्ति क्षेत्र के तीनों दर्जों सेभी ऊपर उठकर उस तुर्यावस्था को पा जाता है जिसमें परमात्मा का सान्निध्य निश्चित हों जाता। जो योगी सभी इच्छाओं से रहित होकर संसार के प्रत्येक पदार्थ में अनित्य-भावना रखता है। साथ ही सब से शुद्ध प्रेम की भावना को त्याग नहीं करता, वह, जन्म, जरा, मृत्यु से अवश्य छुटकारा पाकर मुक्त हो जाता है इसमें संशय नहीं। अन्य कोई मार्ग छुटकारा पाने का नहीं है। योग मार्ग वाले को भूलकर भी इन्द्रियों का सेवन नहीं करना चाहिए और वैराग्य धारण करके ही रहना चाहिये। यदि कोई केवल पद्मासन लगाकर और नासिका के अग्रभाग का निरीक्षण करते रह कर योग में पूर्णता पाने की आशा करे; तो यह उसकी भूल हैं। इन्द्रियों और मन के संयोग को मिटा देने या नियन्त्रण में रखना ही योग का सच्चा स्वरूप है।

सांख्य-योग से आत्मा की एकता—

आगे चलकर सांख्य-योग के अनुसार मुक्ति-प्राप्ति का मार्ग दर्शन करते हुये कहा है—

"समस्त प्राणियों में जब एक ही परमात्मा विराजमान है और उस परमात्मा-तत्व की दृष्टि से किसी में कुछ अन्तर नही है तो हमको सब प्राणियों में अपनी आत्मा ही देखनी चाहिए। जब ऐसा सच्चा दृष्टिकोण प्राप्त हो जाता है मनुष्य स्वयं ही "ब्रह्म" के समान हो जाता है। वह जितना ही आर्थिक आत्मा को जनता है उतना ही पराई आत्मा में भी अपनी आत्मा को देखने लगता है। इस प्रकार भावना निरन्तर बनी रहने के मनुष्य अमृत्व को प्राप्त हो जाता है। जिस तरह पक्षियों की गति अन्तरिक्ष में होती है और मत्स्यों की जल में हुआ करती हैं उसी प्रकार उपर्युक्त ज्ञानवेत्ताओं की गति ऐसी सूक्ष्म होती है जो एका-एक दिखलाई नहीं पड़ती। आत्मा के द्वारा आत्मा को यह काल ग्रसता और पचन करता रहता है पर उस काल के विषयों में सभी सांसारिक व्यक्ति अनभिज्ञ रहा करते हैं। ये सभी लोक उस काल के भीतर हीं रहा करते हैं उससे बाहर कुछ भी नहीं है।

उपर्युक्त आत्म-भावना किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है इसका विवेचन करते हुये पुराणकार ने कहा है कि "आत्मा की सर्व व्यापकता का ज्ञान मनुष्य के अपने प्रशान्त, दमनशील और आत्म प्रेमी स्वभाव द्वारा प्राप्त हो सकता है। इस सम्बन्ध में विद्वानों ने पाँच दोष ऐसे बतलाये हैं कि जिनका मूलोच्छेदन करने से आत्मज्ञान प्रबुद्ध हो सकता हैं। वे दोष हैं— काम, क्रोध, लोभ, भय और स्वप्न। योगी क्रोध को शम के द्वारा जीतता है, काम के संकल्पों को वर्जित करने से दबाया जाता है ,सत्व के अभ्यास से निद्रा का उच्छेद किया जाता है। धैर्य से शिश्न और उदय की रक्षा-करनी चाहिए। श्रोत्र तथा चक्षु की मन के द्वारा और बाणी की कर्म के द्वारा रुरक्षा करे। प्रमाद का त्याग कर देने से भय भी जाता रहता है और सत्पुरुषों की सेवा करने से दम्भ दूर हो सकता है।"

ज्ञान-योग की प्रशंसा—

अभ्यास-योग और सांख्ययोग का वर्णन करके लेखक ने ज्ञान-योग का परिचय दिया है इसके लिये उन्होने मनुष्यों की प्रवृत्ति को मुख्यतः

दो भागों में बाँटा हैं--कर्म और विद्या। कर्म मनुष्य सुख और दुःख प्राप्त करता है और विद्या द्वारा संसार-सागर को पार करके मुक्ति का अधिकारी बनता है। इन कर्ममय तथा विद्या से परिपूर्ण दो प्रकार के व्यक्तियो में बड़ा अन्तर होता है। सूक्ष्म कला से युक्त होकर चन्द्रमा के समान सुखद स्पर्श वाला विद्या से युक्त हुआ करता है वह वस्त्र मे चक्र के तन्तु के समान देखा जा सकता हैं किन्तु बतलाया नहीं जा सकता। प्रकृति के प्रभाव से मनुष्य का जीवात्मा सत्. रज, तम, के गुण वाला होता है अन्य द्रष्टि से उसे परमात्मा के गुण वाला कहा जाता है। संसारिक रूप मैं जीव का गुण चेष्टा करना होता है और उस अवस्था में वह 'क्षेत्रविद् कहा जाता हैं इसके ऊपर ज्ञान की द्रष्टि से वह "क्षेत्रविद्" कहा जाता हैं और सातों भवनों की जानकारी रखने वाला होता है। जिस प्रकार योग्य सारथी उत्तम श्रेणी के अश्वों को स्वलश में रखते हुए रथ की इच्छानुसार चलता है. वैसे ही सुयोग्य मन भी इन्द्रियों का संचालन करता है। इन्द्रियों से ऊपर अर्थ (विषय) होते हैं उनसे ऊपर मन होता है, मन से ऊपर बुद्धि और उससे भी ऊपर महान आत्मा है। "महत् से ऊपर "अव्यक्त" और उससे भी ऊपर "अमृत अर्थात आदि-अनन्त अविनाशी होता हैं। इस अमृत पद को प्राप्त कर लेना ही जीव का अन्तिम और सर्वोच्च लक्ष्य होता हैं

इस प्रकार ज्ञान-योन का उपासक समस्त विश्व के गूढ़ तत्व को करतलगत करके भी उसे प्रकट नहीं करता। जैसा भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है संसाँरिक मनुष्यों में बुद्धि भेद उत्पन्न करने के उददेश्य से वाह्य द्रष्टि से समाज के सामान्य नियमानुसार चलता रहता है। फिर भी अन्य बुद्धिमान व्यक्तियों में उसकी परम सूक्ष्म बुद्धि अनुभव द्वारा जानी जा सकती है। बह आत्मज्ञान से अधिष्टित होकर बुद्धि, मन और विषयों सहित इन्द्रियों को संचालित करता है और उनको पूर्णतः स्ववश रखता है। "इस प्रकार विद्या-मार्ग बाला साधक संसार में

रहता हुआ भी परमपद में स्थित होकर "अमृत स्थान को प्राप्त करता है। इसके विपरीत कर्म-मार्ग वाला मनुष्य सांसारिक कार्यों और उपलब्धियों को ही मुख्य उद्देश्य मान कर जीवन का संचालन करता है इसलिये वह मृत्यु को प्राप्त होता है और अवागमन चक्र में पड़ा सुख-दुःख भोगता रहता है।"

इस प्रकार पुराणकार ने कर्म-योग, सांख्य-योग और ज्ञान-योग के मार्गों का परिचय दिया में जिसको एक से बढ़ कर एक समझ लेना चाहिये। इसमें "ज्ञान-योग" सर्व श्रेष्ठ कहा गया है, पर इसका अर्थ यही नहीं हैं कि मनुष्य गेरुआ वस्त्र धारण करके अथवा नग्न होकर साँसारिक कार्यों को तोड़ कर सन्यासी अथवा अवधूत बन जाय, और स्वयं उपार्जन न करके दूसरों से भिक्षा माँग कर या दान ग्रहण करके पेट भरने लगे। ऐसा व्यक्ति तो सब से निम्न श्रेणी का और सबसे अधिक "अज्ञानी" होता हैं अथवा उसे ढोगी वा पाखण्डी कहा जा सकता है. क्योंकि वह स्वयं परिश्रम और उत्तरदायित्व से बच कर दूसरों के परिश्रम के फल को अपहरण करना और चैन का जीवन व्यतीत करना चाहता है। हमें खेद से कहलाना पड़ता है कि आज कल हमारे देश के अधिकाँश "ज्ञान मार्गी" कहलने वाला संत महात्मा 'महन्त' 'स्वामी 'साधु' आदि इसी श्रेणी में आते हैं। वे अपनी स्वार्थपरता और ठग विद्या को ढकने के लिये 'ज्ञानी' होने का दावा तो करते हैं पर भीतर से न तो उसका हृदय शुद्ध होता हैं और न वे स्वयं "अमृत" पद को प्राप्त करने के लिये सचेत होते हैं। वे तो अन्य मनुष्यों को भुलाने में डालकर सांसारिक भोगों का उपभोग करने में ही प्रयत्नशील रहते हैं। वे दूसरों को आत्म ज्ञान का उपदेश क्या देंगें जब स्वयं उसका ही आचरण और उद्देश्य उससे विपरीत होता हैं।

इस लिये "अमृतत्व" के अभिलाषी व्यक्ति के लिये सर्वोत्तम ओर सच्चा मार्ग वही है जिसे भगवान कृष्ण ने ',गीता' में बहुत स्पष्ट रूप सेप्रकट किया हैं। अपने जीवन निर्वाह के लिये आवश्यक सामान्य कर्मों का

कभी त्याग न करो और कभी किसी अन्य के आश्रति बन कर न रहो। ज्ञान की ऊँची से ऊँची स्थिति तक पहुँच कर भी उसके आधार पर कोई ऐसा व्यवहार न करो जिससे सामान्य जनता में बुद्धि भेद उत्पन्न हो और वे अपने उचित कर्तव्यों को त्याग कर अनुचित मार्ग को ग्रहण करने लगे इस लिये सच्चा "ज्ञानी" अथवा 'विद्या-मार्ग' का पथिक वही कहा जा सकता है जो सांसारिक दृष्टि से आदर्श जीवन व्यतीत करता हुआ समाज के अन्य व्यक्तियों के सम्मुख उच्च उदाहरण उपस्थित करता है और हर तरह से उन्हें नीचे स्वर से ऊँचे स्तर पर जाने का मार्ग प्रदर्शन करता है और इन सब व्यवहारों को करते हुये भी वह सांसारिक मोह, लोभ, माया आदि में तनिक भी लिप्त नही होता और अपका आन्तरिक लक्ष्य सदा आत्मा और परमात्मा में ही रखता हैं।

"ब्रह्मपुराण" के रचयिता ने भी अन्त में यही निष्कर्ष निकाला है उसका कथन यह है कि "जिस प्रकार जल में संचारण करने वाला पक्षी जल में लिप्य नहीं हुआ करता वैसे ही आत्ममयी योगी त्रिगुणात्मक सृष्टि में रहता हुआ भी उसके दोषों में लिप्त नहीं होता। ऐसा योगमुक्त मनुष्य चाहे प्रकट में विषयों और वैभव में रहता जान पड़े पर वह उससे सदा अलिप्त ही रहता है। (जैसा उदाहरण महाराज विदेह जनक बतलाया जाता है)। इस प्रकार आत्मा "त्रिगुणों" को जानता है और उनको उत्पन्न भी करता है, पर "त्रिगण" आत्मा को नहीं जानते और न ज्ञानी की आत्मा को वशीभूत कर सकने में समर्थ हो सकते हैं।

हमारे पुराण अनेक बहुमूल्य विशेषताओं के भंडार हैं पर अभी तक उनका आकार शैली और विषयक ऐसा असामान्य रहा है कि सर्व-साधारण उससे लाभ नहीं उठा पाते थे। इसलिये हमने इस संस्करण को इस प्रकार संशोधित कर दिया है और जहाँ आवश्यकता जान पड़ी वहाँ संक्षिप्त भी कर दिया है जिससे सब श्रेणी के पाठक इससे लाभ उठा सके।